❀ ओ३म् ❀

स्तुति-चन्द्रिका

भाषाटीकासहित

ब्रह्मचारी लक्ष्मण जी
ईश्वर आश्रम,
ईश्वर-पर्वत, गुप्तगंगा, श्रीनगर ।

श्रीनगर, कश्मीर, संवत् २००६

प्रथम संस्करण] [मूल्य ८ आने

❀ ओ३म् ❀

स्तुति-चन्द्रिका

भाषाटीकासहित

ब्रह्मचारी लक्ष्मण जी
ईश्वर आश्रम,
ईश्वर-पर्वत, गुप्तगंगा, श्रीनगर।

श्रीनगर, कश्मीर, संवत् २००६

प्रथम संस्करण] [मूल्य ८ आने

सूचना

पहले 'स्तुति-चन्द्रिका' के साथ श्रीब्रह्मविद्या को छपाने का कोई विचार नहीं था। 'स्तुति-चन्द्रिका' का प्रूफ-संशोधन करते समय, कई सज्जनों की प्रार्थना पर, ऐसा उचित समझा गया। फलतः श्रीब्रह्मविद्या को 'स्तुति-चन्द्रिका' के साथ ही प्रकाशित किया जाता है। यही कारण है कि प्राक्कथन में इस का उल्लेख नहीं हुआ है।

न्यू इण्डिया प्रेस, कनाट सरकस, नई दिल्ली।

FOREWORD

1. My heart overflows with immeasurable joy and infinite love and my head bows down in profound reverence to that Parama Siva in whose glory our learned Swami Ji is presenting this sweet collection of some of the excellent outpourings of the Shaiva-Advaita-Vadins of yore, whose rich contributions form the bulk of Kashmir Shaivism.

2. The author, Shri Swami Ishwar Swaroop Ji, as most of his disciples like to call him, hardly needs any introduction to Sanskrit lovers. It was as early as in the year 1933 that he brought out, for the first time, a magnificent edition of Shrimad Bhagwat Gita with a commentary by Shri Abhinava Gupta Acharya. That unique book had such an overwhelming response from high ranking Sanskrit scholars and the general public that later in the year 1943, on constant persuasion of his devotees, Shri Swami Ji had to bring out the first edition of 'Samb-Panchashika' with the text and translation in Hindi. It is here that we find convincing proof of the intellectual and spiritual attainments of Shri Swami Ji.

3. I feel, however, incompetent to estimate the greatness of this highly dynamic Yogi and a powerful thinker, residing in a silent solitary Ashram on the mountain top of Ishabar, seven miles away from the capital of Kashmir. I have, like so many others, found in him some indefinable and conspicuous power

which invariably consecrates anyone who comes in the vicinity of this great and magnetic personality. With all this as the background, I feel convinced that the reader stands to benefit immensely from the publication of Stuti-Chandrika, in its present form.

4. In this Stuti-Chandrika Swami Ji has very successfully achieved a variety of objects. In the first place he endeavours, through a masterly exposition of the thought-elevating meanings of these verses, to implant the seed of aspiration (शुभ इच्छा), to augment the Godward push and finally to bring the psychic being of an individual aspirant in closer touch with the Divine Truth, which is generally hidden in man by his mind, the vital being and physical nature. Prayer has undoubtedly that efficacy. Secondly, in the frequent footnotes, we get revealing glimpses of the fundamentals and the history of Shaivism. Thirdly, the mere recitation of these sacred mantrams leads one to the higher regions of thought. Any attempt at concentration on their embodied meanings is bound to have the miraculous effect of focussing one's scattered consciousness and arousing in him greater interest in other thought-provoking aspects of the underlying principles of this type of ancient Monism.

NEW DELHI.
Dated the 31st May, 1952. *S. P. Dhar*

प्राक्कथन

भगवान् शङ्कर के अनन्य भक्तों की इस पुस्तिका के रूप में सेवा करने का सौभाग्य मुझे आज प्राप्त हुआ है। उन भक्तों के रससिक्त काव्यामृत को पान करने का सुअवसर ईश्वर के शक्तिपात के द्वारा ही यदा-कदा प्राप्त होता है। स्वनामधन्य उन शैवी आचार्यों के इने-गिने श्लोकों का भाषानुवाद करने से न केवल मेरी आत्मा ही हर्षित होगी, अपितु इन श्लोकों का प्रतिदिन पाठ करने से जनता का अन्तःकरणवर्ग भी शनैः शनैः निर्मल बनने का प्रयास करेगा।

यद्यपि भगवान् शङ्कर का गुणानुवाद स्वयं शारदा देवी तथा सहस्र मुख वाले शेषनाग जी भी करने में असमर्थ हैं, तथापि अपनी-अपनी प्रतिभा एवं भक्ति के अनुसार कई आचार्यों ने अनेकानेक स्तुतियों के द्वारा भगवान् शिव को प्रसन्न बनाने का प्रयास किया है, तथा इसी व्याज से अपना और मनुष्यमात्र का उपकार भी किया है।

यह तो मानी हुई बात है कि काश्मीर-मण्डल में अनादि-काल से भगवान् शङ्कर के उपासकों की गणना प्रचुर मात्रा में रही है। इसी भू-स्वर्ग में उन आचार्यों ने अनेक सद्ग्रन्थों की रचना की है—जो "शैव-साहित्य" के नाम से प्रसिद्ध बने हैं। इन ग्रन्थों का अवलोकन करने पर भारत क्या, सभी पाश्चात्यदेशवासी भी मन्त्रमुग्ध तथा आश्चर्यान्वित बन कर उन आचार्यों के मस्तिष्क एवं ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

किन्तु, शोक से कहना पड़ता है कि इन रहस्यमय शैवी ग्रन्थों का अवलोकन पाश्चात्यदेशवासी जिस उत्साह और परिश्रम से करने का प्रयत्न करने लगे हैं, उस उद्योग से अभी भारत-जनता पूर्णतया अनभिज्ञ है। वास्तव में, इन ग्रन्थों का प्रचार भारत में अति अल्प

मात्रा में हो पाया है। संभवतः इसके मुख्य चुने हुए कारण यही हो सकते हैं कि भारत की मूर्धा बनी हुई काश्मीर नगरी, पर्वतावलियों से चारों ओर घिरी रहने के कारण, अन्यान्य देशों से दूर तथा विलग रह कर अपनी संस्कृति और साहित्य को अपने तक ही सीमित रख सकी है। दूसरा हेतु यह कि यहाँ के विद्वज्जनों की भाषा या तो संस्कृत रही है अथवा काश्मीरी; इन दोनों भाषाओं के अतिरिक्त वे अन्य भाषाओं को न तो जानते ही थे और न जानने के इच्छुक ही थे। अपने शिष्यों को पढ़ाने के समय वे अपनी देशभाषा काश्मीरी को ही माध्यम बनाते थे, तथा अपनी पुस्तकों को वे "शारदा लिपि" में लिखा करते थे। ऐसी अवस्था में भिन्न-भिन्न भाषाओं में इन ग्रन्थों का अनुवाद होना नितांत असंभव था। इसके अतिरिक्त प्रायः यहाँ के सभी विद्वान् बहिर्मुख-वृत्ति को 'फोक' की भांति त्याग कर अन्तर्मुख अवस्था को प्राप्त करना ही परम लक्ष्य मानते थे। इन्हीं कारणों के फलस्वरूप यहाँ का साहित्य यहाँ के निवासियों की ही 'निधि' बन कर रहा है।

अस्तु, शैव सिद्धान्त के संस्थापक पूर्व आचार्यों के ग्रन्थों में से कतिपय भक्तिरसपूर्ण श्लोकों को एकत्रित करके इस 'स्तुति-चन्द्रिका' नामक पुस्तिका की रचना की गई है। जनता के हाथों में इस प्रस्तुत पुस्तिका को पहुँचाने का सौभाग्य मेरे कई प्रेमी जनों पर ही निर्भर है; उनकी सत्-प्रेरणा से विवश बन कर मुझे उनके हितार्थ यह सुप्रयास करना पड़ा। 'स्तुति-चन्द्रिका' को प्रकाशित करने का बीड़ा भी इन महानुभावों ने अपने कंधों पर लिया है, अतः इस शुभ-कार्य के उपलक्ष में मैं उन्हें हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ।

इसके साथ ही इस पुस्तिका को बनाने में मेरी दो शिष्याओं ने अपनी सरल बुद्धि के अनुसार किसी-किसी स्थान पर अपना सुपरामर्श देकर मुझे प्रसन्न किया है, अतः उन्हें भी मैं हृदय से आशिष देता हूँ।

पाठकों की सुविधा के लिये, जहाँ तक हो सका है, इन स्तुत्यात्मक

श्लोकों का सरल हिन्दी में अर्थ अन्वय सहित करने का प्रयत्न किया गया है। अन्वय समझाने के लिये कुछ ऐसे शब्दों का कहीं-कहीं समावेश किया गया है जो मूल श्लोक में नहीं हैं। ऐसे शब्दों को कोष्ठकों के बीच में रखा गया है। संस्कृत के विद्यार्थियों को सबसे बड़ी कठिनाई अन्वय समझने में होती है, अतः सामान्य योग्यता के पाठकों को इससे बड़ी सुगमता होगी। इसके अतिरिक्त किसी-किसी आवश्यक स्थान पर श्लोकों का भाव विस्तृत रूप से समझाने के लिये नीचे पाद-टिप्पणियाँ दी गई हैं। इन पदों के आगे भिन्न-भिन्न प्रकार के चिह्न भी चिह्नित कर दिये गये हैं।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि यदि पाठक-महोदय इस स्तोत्र के पढ़ने से अपनी मानसिक शांति किसी भी अंश में प्राप्त करेंगे तो मैं अपने आपको सफलमनोरथ तथा कृतार्थ समझूंगा।

ईश्वर-आश्रम,
ईश्वर-पर्वत,
गुप्तगंगा, श्रीनगर।
१५ मई १९५२

शिवभक्तानुचर
लक्ष्मण

ॐ

नमः परमेश्वराय

अगाधसंशयाम्भोधिसमुत्तरणतारिणीम् ।
वन्दे विचित्रार्थपदां चित्रां तां गुरुभारतीम्* ॥१॥

(अहं)	= मैं	अर्थ-	= अर्थों और
तां	= उस	पदाम्	= पदों वाली
अगाध-	= गहरे	चित्राम्	= अनूठी
संशय-	= सन्देहरूपी	गुरु-भारतीम्	= गुरुदेव की वाणी को
अम्भोधि-	= समुद्र के	वन्दे	= प्रणाम करता हूँ ॥१॥
समुत्तरण-	= पार ले जाने में		
तारिणीम्	= नौका के समान		
विचित्र-	= विचित्र		

* रहस्य संप्रदाय के आधार पर परमेश्वर की अनुग्राहिका शक्ति को वास्तव में गुरु-भारती कहते हैं ; और इसी अनुग्राहिका शक्ति के फलस्वरूप, स्वरूप-साक्षात्कार के समय जिन अनेकानेक योग-सिद्धियों की प्राप्ति होती है—उनकी विचित्र अर्थों के साथ उपमा दी गई है । साथ ही पदों का तात्पर्य उन योग-भूमिकाओं से है जिनका अनुभव योगी-जन करते रहते हैं । यही अनुग्राहिका शक्ति भक्त के लिये संशयरूपी समुद्र से पार ले जाने में सफल नौका के समान है ॥ १ ॥

*सदसदनुग्रहनिग्रहगृहीतमुनिविग्रहो भगवान् ।
सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति दैशिकः प्रथमः ॥२॥

सत्-	= शुभ (तथा)	सर्वासां	= सारे
असत्-	= अशुभ रूपी	उपनिषदां	= उपनिषदों के
अनुग्रह-	= अनुग्रह (और)	प्रथमः	= आद्य
निग्रह-	= निग्रह से	दैशिकः	= उपदेशक
गृहीत-	= धारण किये हुए	भगवान्	= सर्व-ऐश्वर्य-संपन्न
मुनि-	= ऋषि के	दुर्वासा	= प्रभु दुर्वासा की
विग्रहः	= शरीर वाले	जयति	= जय हो ॥२॥

†त्रैयम्बकाभिहितसन्ततिताम्रपर्णी-
सन्मौक्तिकप्रकरकांतिविशेषभाजः ।
पूर्वे जयन्ति गुरवो गुरुशास्त्रसिन्धु-
कल्लोलकेलिकलनामलकर्णधाराः ॥३॥

---

*शैव सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर की पाँच शक्तियाँ हैं :—सृष्टि-शक्ति, स्थिति-शक्ति, संहार-शक्ति, निग्रह-शक्ति और अनुग्रह-शक्ति। इन में से पहिली तीन शक्तियाँ प्राणियों के कर्मों का आश्रय लेकर ही अपना कार्य करती हैं; किन्तु निग्रह-शक्ति और अनुग्रह-शक्ति केवल शिव की स्वतंत्र इच्छा से ही अपना कार्य करती हैं और जीवों के कर्मों का प्रभाव उन दो शक्तियों पर तनिक मात्र भी नहीं पड़ता है। अनुग्रह-शक्ति के स्पर्श से जीव अपने स्वरूप का साक्षात्कार करने में समर्थ बनता है और निग्रह-शक्ति से उसका पारमार्थिक स्वरूप आच्छादित हो जाता है। इन्हीं दो शक्तियों की ओर यहां संकेत है। ऋषि दुर्वासा इन दो शक्तियों से संपन्न थे ॥ २ ॥

†शैव शास्त्र, "त्र्यम्बक, आमर्दक, श्रीनाथ तथा अर्धत्र्यम्बक"—इन साढ़े तीन शाखाओं के द्वारा जगत् में अवतरित हुआ है। अद्वैतप्रधान शैव-शास्त्रों

त्रैयम्बक- = त्र्यम्बकनाथ की शाखा में	गुरु- = गहरे
अभिहित- = कहे गये	शास्त्रसिन्धु- = शास्त्र रूपी समुद्र की
सन्तति- = सम्प्रदाय रूपी	कल्लोल- = लहरों की
ताम्रपर्णी- = ताम्रपर्णी नदी में	केलि- = क्रीड़ा के
सत्- = परमार्थ रूपी	कलना- = रचने में
मौक्तिक- = मोती के	अमल- = निर्मल अर्थात् योग्य
प्रकर- = समूह की	कर्णधाराः = नाविक
कांतिविशेष- = असामान्य दीप्ति को	पूर्वे = पिछले
भाजः = धारण करने वाले	गुरवः = गुरुजनों की
	जयन्ति = जय हो ॥३॥

जयति गुरुरेक एव श्रीश्रीकण्ठो* भुवि प्रथितः ।
तदपरमूर्त्तिर्भगवान् महेश्वरो भूतिराजश्च ॥४॥

भुवि = जगत् में	श्री = मोक्ष-लक्ष्मी-संपन्न
प्रथितः = विख्यात	श्रीकण्ठः = श्रीकण्ठनाथ
एक एव = अद्वितीय	जयति = जयनशील हों
गुरुः = गुरुदेव	

का सम्प्रदाय श्री त्र्यम्बकनाथ जी की शाखा में ही प्रकट हुआ है। त्र्यम्बकनाथ जी की शाखा में अवतरित पूर्व-गुरुजनों की स्तुति की ओर ही इस श्लोक में संकेत है ॥ ३ ॥

*शास्त्रों का कथन है कि जब कलियुग के प्रादुर्भूत होने पर समस्त शैव शास्त्रों का संप्रदाय पूर्ण रूप से लुप्तप्राय हुआ था, तब भगवान् शङ्कर जी कैलाश पर्वत में श्रीकण्ठनाथ जी के रूप में स्वयं प्रकट हुए, और उन्होंने ऋषि

च	= और	(तथा)	= एवं
तत्-	= उनके ही	भूतिराजः	= श्री भूतिराज जी की
अपरमूर्त्तिः	= दूसरे रूप		
भगवान्	= भगवान्	(अपि)	= भी
महेश्वरः	= महेश्वर	(जयति)	= जय हो ॥४॥

*श्रीसोमानन्दबोधश्रीमदुत्पलविनिःसृताः ।
जयन्ति संविदामोदसन्दर्भा दिक्प्रसर्पिणः ॥५॥

श्रीसोमानन्द-	= श्री सोमानन्द जी के	दिक्	= भिन्न-भिन्न दिशाओं में
बोध-	= संप्रदाय से	प्रसर्पिणः	= फैले हुए
श्रीमत्-	= और श्रीमान्	संवित्-	= ज्ञान रूपी
उत्पल-	= उत्पलदेव जी से	आमोद-	= सुगन्धि के
विनिःसृताः	= निकले हुए	सन्दर्भाः	= समूहों की
(च)	= और	जयन्ति	= जय हो ॥५॥

दुर्वासा के द्वारा ही समस्त शैव शास्त्रों का संप्रदाय पुनः स्थापित करवाया। अस्तु; श्रीनाथ जी की भेदाभेदप्रधान शाखा में श्रीमान् महेश्वरनाथ जी हुए हैं और अर्धत्र्यम्बक शाखा में श्रीमान् भूतिराज जी विख्यात हुए हैं। इन्हीं तीन आचार्यों की ओर इस श्लोक में संकेत है ॥ ४ ॥

*श्री सोमानन्द जी की वंशावली के विषय में कहा जाता है कि प्रारम्भ में समस्त शैवशास्त्र ऋषियों को कण्ठस्थ हुआ करते थे, इसी से वे अनुग्रहशक्तिशाली बने हुए थे। बाद में कलियुग का आगमन होने पर वे समस्त ऋषिजन दुर्गम पर्वतों की कन्दराओं में जा छिपे, इधर शैवशास्त्रों का संप्रदाय प्रतिदिन लुप्त होने लगा। यह दशा देखकर कैलाश-पर्वत-वासी श्रीकण्ठनाथ जी ने ऋषि दुर्वासा को शैवसंप्रदाय पुनः स्थापित करने के लिये प्रेरित किया। तत्पश्चात् ऋषि दुर्वासा जी ने श्री त्र्यम्बकनाथ नामी एक मानसिक पुत्र उत्पन्न

तदास्वादभरावेशबृंहितां मतिषट्पदीम् ।
गुरोर्लक्ष्मणगुप्तस्य नादसंमोहिनीं नुमः ॥६॥

तत्-	= उस ज्ञान की सुगन्धि के	संमोहिनीं	= मोहित करने वाली
आस्वाद-	= रसास्वादन की	गुरोः	= गुरुदेव
भर-	= अधिकता के	लक्ष्मणगुप्तस्य	= लक्ष्मणगुप्त जी की
आवेश-	= आवेश से	मति-	= बुद्धिरूपिणी
बृंहितां-	= बढ़ी हुई	षट्पदीम्	= भौंरी की
(एवं)	= तथा	(वयं)	= हम
नाद-	= व्याख्यान-रूपी भिन-भिनाहट से	नुमः	= स्तुति करते हैं ॥६॥

सदाभिनवगुप्तं यत्पुराणं च प्रसिद्धिमत् ।
हृदयं तत्परोल्लासैः स्वयं स्फूर्जत्यनुत्तरम् ॥७॥

किया जिन्होंने अद्वैत-प्रधान शैव शास्त्रों को संसार-मंडल में प्रकाशित किया । इसी भांति चौदह मानसिक सिद्ध उत्पन्न हुए । इस बीच में कलियुग का प्रभाव बहुत जोर पकड़ गया था, अतः पंद्रहवां मानसिक पुत्र, जो समस्त शैवशास्त्रों का ज्ञाता था, अपना मानसिक पुत्र उत्पन्न करने में असमर्थ रहा । "शैवशास्त्रों का संप्रदाय फिर से लुप्त न हो जाय" इस उद्देश्य को समक्ष रख कर उन्होंने एक ब्राह्मण कन्या से विवाह किया, जो समस्त गुणों से संपन्न थी । अपनी भार्या से उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम संगमादित्य था । इसके पश्चात् इनका पुत्र वर्षादित्य, उनका पुत्र अरुणादित्य हुआ । अरुणादित्य के पुत्र आनन्दादित्य हुए। इन्हीं के सुपुत्र श्री सोमानन्द जी हुए हैं और उनके शिष्य श्री उत्पलदेवाचार्य हुए हैं ॥ ५ ॥

यत्	= जो	तत्	= वही
अभिनवगुप्तं	= अभिनवगुप्त द्वारा प्रतिपादित	अनुत्तरम्	= अति उत्तम
हृदयं	= (शास्त्ररूपी) हृदय	(हृदयं)	= शास्त्ररूपी हृदय
सदा	= सदैव	पर-	= महान्
पुराणं	= पुराना	उल्लासैः	= उल्लासों से
च	= और	स्वयं	= आप ही आप
प्रसिद्धिमत्	= विख्यात हुआ है	स्फूर्जति	= विकास को प्राप्त होता है ॥७॥

अभिनवरूपा शक्तिः तद्गुप्तो यो महेश्वरो देवः ।
तदुभययामलरूपमभिनवगुप्तं* शिवं वन्दे ॥८॥

(या)	= जो	यः	= जो
शक्तिः	= परा शक्ति	महेश्वरः देवः	= महादेव जी
अभिनवरूपा	= नित नये रूप वाली	तत्-	= उस पराशक्ति से
(अस्ति)	= है	गुप्तः	= सुरक्षित हैं
(च)	= और	तदुभय-	= उन दोनों

* अतः पराशक्ति और परमशिव की पारस्परिक संघट्टरूपता ही अभिनवगुप्त-पद का वास्तविक अर्थ है। अथवा श्लेषालङ्कार का आश्रय लेकर इस श्लोक में आचार्य अभिनवगुप्त जी की ओर भी संकेत है, यतः वे भी शिवशक्तिसमावेश से संपन्न थे। इस प्रकार उन्होंने अपने नाम को सार्थक बना कर जगत् में प्रसिद्ध किया ॥ ८ ॥

यामल-	= मिले जुले	शिवं	= शिव जी महाराज को
रूपम्	= रूप वाले		
अभिनवगुप्तं	= अभिनवगुप्त-स्वरूप	वन्दे	= मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

य: पूर्णानन्दविश्रान्तसर्वशास्त्रार्थपारग: ।
श्रीक्षेमराज: सो दिश्यादिष्टं मे गुरुरुत्तम: ॥९॥

य:	= जो	स:	= वह (मेरे)
पूर्णानन्द-	= परमानन्द में	उत्तम:	= उत्कृष्ट
विश्रान्त-	= विश्रांत होने के कारण	गुरु:	= गुरु-देव
		श्रीक्षेमराज:	= श्री क्षेमराजजी
सर्व-	= सभी	मे	= मुझे
शास्त्रार्थ-	= शास्त्रों के अर्थों के	इष्टं	= अभीष्ट पद का मार्ग
पारग:	= पारंगत हैं	दिश्यात्	= दिखायें ॥९॥

श्रीवसुगुप्तमहागुरुसोमानन्दप्रभूत्पलाचार्यान् ।
अभिनवगुप्तं नाथं वन्दे श्रीक्षेमराजञ्च ॥१०॥

(अहं)	= मैं	उत्पलाचार्यान्	= और उत्पल-देव जी इन तीन आचार्यों
श्रीवसुगुप्त-	= श्री वसुगुप्त-नामी		
महागुरु-	= महान् गुरु	(एवं)	= तथा
सोमानन्दप्रभु-	= सोमानन्दप्रभु	नाथं	= स्वामी

अभिनवगुप्तं	= अभिनव-गुप्त जी	श्रीक्षेमराजं	= श्रीमान् क्षेम-राज जी की
च	= और	वन्दे	= वन्दना करता हूँ ॥१०॥

नमो निखिलमालिन्यविलापनपटीयसे ।
महामाहेश्वराय श्रीरामाय गुरुमूर्त्तये ॥११॥

निखिल-	= समूचे	गुरुमूर्त्तये	= गुरु-मूर्ति-स्वरूप
मालिन्य-	= पापरूपी मैल को	श्रीरामाय	= श्री राम जी को
विलापन-	= दूर करने में		
पटीयसे	= बड़े प्रवीण	नमः	= नमस्कार
महामाहेश्वराय	= महेश्वर के बड़े भक्त	(अस्तु)	= हो ॥११॥

अदृष्टविग्रहागतं* मरीचिचक्रविस्तरम् ।
अनुग्रहैककारणं नमाम्यहं गुरुक्रमम् ॥१२॥

अहं	= मैं	मरीचिचक्र-	= शक्ति चक्र के
अदृष्ट-	= अप्रकट	विस्तरम्	= विस्तार-स्वरूप
विग्रह-	= रूप में		
आगतं	= आये हुए	(एवं)	= तथा

---

* कहा भी है कि—

" मनुष्यदेहमास्थाय छन्नास्ते परमेश्वराः ।"

अर्थात् मनुष्य शरीर को धारण करके परमेश्वर ही गुरु रूप में गुप्त रूप से ठहरे हुए हैं ॥ १२ ॥

अनुग्रह-	= दया के	नमामि	= नमस्कार करता हूँ ॥१२॥
एककारणं	= एकमात्र कारण		
गुरुक्रमम्	= गुरु-परम्परा को		

तद्देवताविभवभाविमहामरीचि-*
चक्रेश्वरायितनिजस्थितिरेक एव ।
देवीसुतो गणपतिः स्फुरदिन्दुकांतिः
सम्यक्समुच्छलयतान्मम संविदब्धिम्† ॥१३॥

तत्-	= उन परा आदि	निजस्थितिः	= अपने स्वरूप वाले
देवता-	= देवताओं के	स्फुरत्-	= धारण किये हुए
विभव-	= ऐश्वर्य से	इन्दुकांतिः	= चन्द्रमा की कांति से युक्त
भावि-	= होने वाले	एक एव	= एक ही
महा-	= महान्	देवीसुतः	= भगवती के पुत्र
मरीचिचक्र-	= शक्ति चक्र में	गणपतिः	= श्रीगणेश जी
ईश्वरायित-	= परमेश्वर के समान		

---

* यद्यपि परमेश्वर की शक्तियों की संख्या अनगणित है तथापि मुख्यतया उसकी तीन ही शक्तियाँ मानी गई हैं :—परा, परापरा और अपरा । परमेश्वर की इच्छाशक्ति पराशक्ति, ज्ञानशक्ति परापराशक्ति और क्रियाशक्ति अपरा-शक्ति कहलाती हैं ॥ १३ ॥

† इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर ही समुद्र उछलने लगता है ; इसी भाँति श्रीगणेश जी भी मेरे ज्ञानरूपी समुद्र को उछलायें ॥ १३ ॥

मम	= मेरे	सम्यक्	= भली भांति
संविदब्धिम्	= ज्ञानरूपी समुद्र को	समुच्छलयतात्	= उछलायें॥१३॥

नमः कारुण्यदेहाय वीराय शुभदन्तिने ।
भक्तिगम्याय भक्तानां दुःखहर्त्रे नमोऽस्तु ते ॥१४॥

कारुण्यदेहाय	= दयास्वरूप	शुभ-	= कल्याण-कारक अथवा श्वेत
वीराय	= बड़े वीर		
भक्ति-	= भक्ति द्वारा		
गम्याय	= प्राप्त किये जा सकने वाले	दन्तिने	= दान्तों वाले
		ते	= आप गणेश जी को
भक्तानां	= अपने भक्तों के		
		नमः	= नमस्कार
दुःखहर्त्रे	= दुःखों को दूर करने वाले	अस्तु	= हो ॥१४॥

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां* जगतः प्रलयोदयौ ।
तं शक्तिचक्रविभवप्रभवं शङ्करं स्तुमः ॥१५॥

(वयं)	= हम	प्रभवं	= उत्पत्ति-स्थान
शक्तिचक्र-	= शक्तिचक्र संबंधी	तं	= उस
विभव-	= ऐश्वर्य के	शङ्करं	= महादेवजी की

*पाठक इस श्लोक को देख कर कहीं भ्रमित न हों कि ईश्वर के उन्मेष से जगत का नाश और निमेष से जगत का उदय कैसे होता है। पारमार्थिक दृष्टि से ईश्वर के स्वरूप का विकास ही जगत के नष्ट होने का हेतु है और उसके स्वरूप का निमेष ही जगत के उदय का कारण है ॥ १५ ॥

स्तुमः	= स्तुति करते हैं	(क्रमेण)	= क्रमशः
यस्य	= जिस के	जगतः	= संसार का
उन्मेष-	= उन्मेष और	प्रलयोदयौ	= नाश और उदय
निमेषाभ्यां	= निमेष से	(भवतः)	= होता है ॥१५॥

नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्यविधायिने* ।
चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्थावभासिने ॥१६॥

पञ्च	= (सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान और अनुग्रह इन) पांच	स्वात्मपरमार्थ-	= अपने स्वरूप के तत्त्व को
कृत्य-	= कृत्यों की	अवभासिने	= उज्ज्वल रूप में दिखाने वाले
विधायिने	= रचना करने वाले	शिवाय	= शिवजी महाराज को
चिदानन्दघन	= चिदानन्दघन रूपी	सततं	= सदा
		नमः	= नमस्कार
		(अस्तु)	= हो ॥१६॥

आश्यानं चिद्रसस्यौघं साकारत्वमुपागतम् ।
जगद्रूपतया वन्दे प्रत्यक्षं भैरवं वपुः ॥१७॥

---

* सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान तथा अनुग्रह—ये पाँच परमेश्वर के महान् कृत्य हैं । इन पाँच कृत्यों के द्वारा परमेश्वर क्रमपूर्वक जगत को उत्पन्न करता है, पालन करता है और पश्चात् इस जगत का संहार करने के अनन्तर इसको संस्काररूपता से अपने भीतर स्थापित करता है जिसका नाम पिधान है । कदाचित् अपनी अप्रतिहता स्वातंत्र्यशक्ति के द्वारा इस संस्कार का भी मूलोच्छेदन करता है—यह पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह कहलाता है ॥ १६ ॥

(यत्)	= जो	(तत्)	= उस
आश्यानं	= घनीभूत	प्रत्यक्षं	= प्रत्यक्ष
चिद्रसस्य	= चित्‌रस का	भैरवं	= भैरव के
ओघं	= समूह ही	वपुः	= स्वरूप को
जगद्‌रूपतया	= संसार के रूप में	(अहं)	= मैं
साकारत्वं	= साकारता को	वन्दे	= प्रणाम करता हूँ
उपागतम्	= प्राप्त हुआ है		॥१७॥

भीरूणामभयप्रदो भवभयाक्रन्दस्य हेतुस्ततो
हृद्धाम्नि प्रथितश्च भीरवरुचामीशोऽन्तकस्यान्तकः।
भेरं वायति यः सुयोगिनिवहस्तस्य प्रभुर्भैरवो
विश्वस्मिन्भरणादिकृद्विजयते विज्ञानरूपः परः ॥१८॥

भीरूणाम्	= सांसारिक दुःखों से डरे हुए मनुष्यों को	हृत्	= उनके हृदय रूपी
		धाम्नि	= गृह में
		प्रथितः	= प्रकट होता है
(यः)	= जो	च	= और जो
अभयप्रदः	= अभय-दान देने वाला है	भीरव	= भयभीत पुरुषों की
भव-भय-आक्रन्दस्य	= संसार के भय से होने वाली चिल्लाहट का	रुचाम्	= अभयदान रूपी अभिलाषा को पूर्ण करने में
(यः) हेतुः	= जो कारण है	ईशः	= स्वतंत्र है
ततः	= और उसी कारण से	(यः)	= जो
		अन्तकस्य	= महाकाल का भी

अन्तकः = संहार करने वाला है
(एवं) = तथा
सुयोगि- = उत्तम योगियों का
निवहः = समूह
यः = जो कि
भेरं = काल को भी
वायति = सुखाते हैं अर्थात् संहार करते हैं
तस्य = उन का भी
(यः) = जो
प्रभुः = स्वामी है
(इत्येवं) = ऐसे लक्षणों से युक्त
विश्वस्मिन् = संसार में
भरणादिकृत् = पालन-पोषण करने वाले
विज्ञानरूपः = विज्ञान स्वरूप
परः भैरवः = परम भैरव की
विजयते = जय हो ॥१८॥

उद्धरत्यन्धतमसाद्विश्वमानन्दवर्षिणी।
परिपूर्णा जयत्येका देवी चिच्चन्द्रचन्द्रिका ॥१६॥

(सा) = वह
आनन्दवर्षिणी = आनन्द बरसाने वाली
परिपूर्णा = परिपूर्ण स्वरूप वाली
एका = अनुपम
चिच्चन्द्र- = चित् रूपी चन्द्रमा की
चन्द्रिका = ज्योत्स्ना
जयति = जयनशील हो
(या) = जो
देवी = देवी
विश्वं = संसार को
अन्धतमसात् = अज्ञान रूपी अन्धकार से
उद्धरति = उद्धार करती है ॥१६॥

आनन्दसुन्दरपुरन्धरमुक्तमाल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पादाम्बुजं* भवतु मे विजयाय मञ्जु-
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥२०॥

मञ्जीर- = मञ्जीरों की
शिञ्जित- = घनघनाहट के कारण
मनोहरं = मनोहारी
महिषासुरस्य = महिषासुर के
मौलौ = सिर पर
हठेन = आग्रहपूर्वक
निहितं = रखा गया
(अत एव) = और इसी कारण
आनन्द- = आनन्द से
सुन्दर- = सुन्दर अर्थात् प्रसन्न बने हुए

पुरन्धर- = इन्द्र द्वारा
मुक्तमाल्यं = उपहार की गई माला वाला
अम्बिकायाः = माता दुर्गा जी का
मञ्जु- = सुन्दर
पादाम्बुजं = चरण कमल
मे = मेरी
विजयाय = विजय के लिये
भवतु = हो ॥२०॥

---

*पौराणिक किंवदन्ती है कि महिषासुर नामक बलशाली दैत्य इन्द्र महाराज को बहुत सताया करता था। इस दुःख से छुटकारा प्राप्त करने के लिए इन्द्र ने श्री दुर्गाजी की शरण ली ; भक्त के हितार्थ देवी दुर्गा सिंहारूढ़ बन कर महिषासुर के समीप आईं तथा उसके सिर को अपने चरणों से ऐसा दबाया कि वह पाताल में जा पहुँचा । यह देखकर इन्द्र हर्षित हुए और दुर्गाजी के चरणों पर शिर झुकाने लगे ; ऐसा करते हुए उनकी मोतियों की माला दुर्गाजी के चरणों पर गिर पड़ी। इस श्लोक में इन्द्रसंबन्धिनी मोतियों की माला से शोभित दुर्गाजी के उन्हीं चरणों के ध्यान की ओर संकेत है ।

ये देवि दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्थाः
ये कालि कालघनपाशनितान्तबद्धाः ।
ये चण्डि चण्डगुरुकल्मषसिन्धुमग्ना-
स्तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ॥२१॥

देवि	= हे भगवती !
ये	= जो लोग
दुर्धर-	= असह्य
कृतान्त-	= मृत्यु के
मुखान्तर-	= मुख में
स्थाः	= पड़े हुए हैं
कालि	= हे कालिका !
ये	= जो
काल-	= महाकाल के
घनपाश-	= बड़े भारी फंदे में
नितान्त-	= पूर्णरूप में
बद्धाः	= फंसे हुए हैं
(च)	= और
चण्डि	= हे चण्डिके !
ये	= जो
चण्ड-	= भयानक और
गुरुकल्मष-	= बड़े बड़े पापों के
सिन्धु-	= समुद्र में
मग्नाः	= डूबे हुए हैं
(तैः)	= उनके द्वारा
स्मृता एव	= स्मरण किये जाने पर ही
(त्वं)	= तुम
तान्	= उन को
(क्रमेण)	= क्रमशः
पासि	= बचाती हो
मोचयसि	= छुड़ाती हो और
तारयसि	= पार ले जाती हो ॥२१॥

ब्रह्माण्डबुद्बुदकदम्बकसङ्कुलोऽयं
मायोदधिर्विविधदुःखतरङ्गमालः ।
आश्चर्यमम्ब झटिति प्रलयं प्रयाति
त्वद्ध्यानसंततिमहावडवामुखाग्नौ ॥२२॥

अम्ब = हे माता
ब्रह्माण्ड- = ब्रह्माण्डों रूपी
बुद्बुद- = बुलबुलों के
कदम्बक- = समुदाय से
संकुलः = भरा हुआ
(च) = और
विविध- = भिन्न भिन्न प्रकार के
दुःख- = दुःखों रूपी
तरङ्गमालः = लहरों की माला को धारण करने वाला
अयं = यह
माया-उदधिः = माया रूपी समुद्र

त्वत् = आपके
ध्यान- = ध्यान की
संतति- = परम्परा रूपी
महा- = बड़ी भारी
वडवामुखाग्नौ = वडवाग्नि के मुख में पड़ते ही
झटिति = तत्क्षण
प्रलयं = नाश को
प्रयाति = प्राप्त हो जाता है
(इति) = यह तो
आश्चर्यम् = बड़े आश्चर्य की बात है ॥२२॥

**न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम् ।
एवमेव शिवाभासस्तं नमो भक्तिशालिनम् ॥२३॥**

तं = उस
भक्तिशालिनं = भक्तिशाली जन को
नमः = नमस्कार हो
यस्य = जिसे
न ध्यायतः = न ध्यान करने पर

न जपतः = और जपादि न करने पर
अविधिपूर्वकं = ध्यानादि विधि का पालन किये बिना
एवमेव = अकस्मात् ही

शिवाभासः	= शिवजी महाराज का साक्षात्कार	स्यात्	= हो जाय ॥२३॥

सर्व एव भवल्लाभहेतुर्भक्तिमतां विभो ।
संविन्मार्गोऽयमाह्लाददुःखमोहैस्त्रिधा स्थितः ॥२४॥

विभो	= हे व्यापक प्रभु !	संविन्मार्गः	= नीलपीतादि ज्ञान रूपी संसार का मार्ग
आह्लाद-	= सत्त्वप्रधान सुख से		
दुःख-	= रजप्रधान दुःख से	भक्तिमतां	= भक्तजनों के लिए
मोहैः	= और तमोगुण-प्रधान मोह से	भवत्	= आप के स्वरूप की
त्रिधा	= तीन प्रकार से	लाभ-	= प्राप्ति का ही
स्थितः	= ठहरा हुआ	हेतुः	= साधन
अयम्	= यह	(भवति)	= बन जाता है ॥२४॥
सर्वः	= सारा		

सर्वाशङ्काशनिं सर्वालक्ष्मीकालानलं तथा ।
सर्वामंगल्यकल्पान्तं मार्गं माहेश्वरं नुमः ॥२५॥

सर्व-	= सभी	कालानलं	= कालाग्नि के तुल्य
आशङ्का-	= आशङ्काओं का नाश करने के लिये	तथा	= और
		सर्व-	= सभी
अशनिं	= वज्र के समान	अमंगल्य-	= अमंगलता को नष्ट करने के लिये
सर्व-	= समूची		
अलक्ष्मी-	= दरिद्रता को भस्म करने में	कल्पान्तं	= कल्पान्त के समान बने हुए

माहेश्वरं	= महेश्वर भगवान् के	नुमः	= हम स्तुति करते हैं ॥२५॥
मार्ग	= सत्पथ की		

दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते ।
मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शाङ्करः ॥२६॥

यत्र	= जिस पथ पर चलने से	संसारः	= (यह भयंकर) संसार ही
दुखानि अपि	= अनन्त दुःख भी	मोक्षायते	= मोक्ष की प्राप्ति का साधन बन जाता है
सुखायन्ते	= सुखरूपता में ही दीख पड़ते हैं		
विषमपि	= विष भी	सः	= वही
अमृतायते	= अमृत बन जाता है	मार्गः	= मार्ग तो
		शाङ्करः	= शङ्कर का मार्ग कहलाता है ॥२६॥
च	= और		

देव प्रसीद यावन्मे त्वन्मार्गपरिपन्थिकाः ।
परमार्थमुषो वश्या भवेयुः गुणतस्कराः ॥२७॥

देव	= हे देव !	मुषः	= छीनने वाले
त्वन्मार्ग-	= आपके पारमार्थिक पथ में	गुणतस्कराः	= इन्द्रिय रूपी चोर
परिपन्थिकाः	= विघ्न डालने वाले	यावत्	= जितने समय तक
(एवं)	= तथा	मे	= मेरे
परमार्थ-	= परमार्थ-धन को	वश्याः	= वशीभूत

भवेयुः = हो जायें
(तावत्) = तब तक
(त्वं) = आप

प्रसीद = मुझ पर प्रसन्न रहें अर्थात् मेरी सहायता करते रहें ॥२७॥

कदा कामपि तां नाथ तव वल्लभतामियाम् ।
यथा मां प्रति न क्वापि युक्तं ते स्यात्पलायितुम् ॥२८॥

नाथ = हे प्रभो !
(अहं) = मैं
तां = उस
कामपि = अलौकिक
तव = तुम्हारे
वल्लभतां = प्रेमभाव को
कदा = भला कब
इयाम् = प्राप्त करूँगा
यथा = जिस प्रेमभाव के प्रभाव से

मां प्रति = मेरे प्रति
ते = तुम्हारा
पलायितुं = (अपने स्वरूप को) छिपाना
क्वापि = कभी भी
युक्तं = उचित
न = नहीं
स्यात् = होगा ॥२८॥

ब्रह्मेन्द्रविष्णुनिर्व्यूढजगत्संहारकेलये* ।
आश्चर्यकरणीयाय नमस्ते सर्वशक्तये ॥२६॥

*अत एव सारे ब्रह्मा आदि देवता जगत का निर्माण करने के अनन्तर इसी भय से कि "अब प्रभु इस समस्त संसार का नाश करेंगे" भगवान शङ्करजी की ओर ही नम्रभाव से देखते रहते हैं। सारे विश्व का संहार करने से प्रभु को निर्दय नहीं समझना चाहिए, बल्कि यह जानना चाहिये कि महादेवजी इस अपनी संहार-लीला से सारे जगत को यही उपदेश देते हैं कि इस संसार में जो कुछ भी उत्पन्न होता है उसका नाश अवश्यम्भावी है; इत्यतः मेरे पारमार्थिक स्वरूप को छोड़ कर अन्य सभी सांसारिक घटपटादि पदार्थ असत्य हैं और इन पर तनिक मात्र भी आस्था नहीं।

(प्रभो)	= हे भगवन् !	(अतएव)	= अत एव
ब्रह्मा-	= ब्रह्मा	आश्चर्य-	= अद्भुत कर्मों को
इन्द्र-	= इन्द्र	करणीयाय	= करने वाले
विष्णु-	= और नारायण के द्वारा	ते	= आप
निर्व्यूढ-	= भलीभांति सुरचित	सर्वशक्तये	= सर्वशक्तिमान् प्रभु को
जगत्-	= इस संसार का	नमः	= नमस्कार हो ॥२९॥
संहार-	= नाश करने की		
केलये	= क्रीड़ा करने में रसिक बने हुए		

नमस्तेभ्योऽपि ये सोमकलाकलितशेखरम् ।
नाथं स्वप्नेऽपि पश्यन्ति परमानन्ददायिनम् ॥३०॥

ये	= जो भक्त-जन	नाथं	= प्रभु शङ्कर जी को
सोमकला-	= चन्द्रमा की कला से	स्वप्नेऽपि	= स्वप्न में भी
कलितशेखरम्	= सुसज्जित सिर वाले	पश्यन्ति	= देखते हैं
		तेभ्यः	= उनको
परमानन्द-	= परम आनन्द	अपि	= भी
दायिनम्	= दिलाने वाले	नमः	= नमस्कार
		(अस्तु)	= हो ॥३०॥

क्रमेण कर्मणा केन कया वा प्रज्ञया प्रभो ।
ज्ञेयोऽसीत्युपदेशेन प्रसादः क्रियतां मयि ॥३१॥

प्रभो	= हे स्वामी !	क्रमेण	= निर्बाध रूप में
(त्वं)	= आप	ज्ञेयःअसि	= जाने जा सकते हैं
केन	= किस	इति	= इस बात का
कर्मणा	= कर्म से	उपदेशेन	= उपदेश करने का
वा	= तथा	मयि	= मुझ पर
कया	= कैसी	प्रसादः	= अनुग्रह
प्रज्ञया	= बुद्धि द्वारा	क्रियताम्	= कीजिए ॥३१॥

किमशक्तः करोमीति सर्वत्रानध्यवस्यतः ।
सर्वानुग्राहिका शक्तिः शाङ्करी शरणं मम ॥३२॥

(अहं)	= मैं	सर्व	= सब प्राणियों पर
अशक्तः	= निर्बल तथा सामर्थ्यहीन	अनुग्राहिका	= दया करने वाली
किं करोमि	= क्या कर सकूँ ?	शाङ्करी	= शिवजी महाराज की
इति	= इस प्रकार	शक्तिः	= शक्ति ही
सर्वत्र	= हर एक बात में	शरणं	= रक्षाकारिणी
अनध्यवस्यतः	= विश्वास न रखने वाले	(भवतु)	= बने ॥३२॥
मम	= मेरे लिये		

क्षमः कां नापदं हन्तुं कां दातुं संपदं न वा ।
योऽसौ स दयितोऽस्माकं देवदेवो वृषध्वजः ॥३३॥

यः	= जो	कां आपदं	= किस आपत्ति को
वृषध्वजः	= (जिसकी ध्वजा बैल है) शिवजी	हन्तुं	= दूर करने
		वा	= और

कां	= किस	असौ	= यह प्रत्यक्षस्वरूप
संपदं	= संपत्ति को	देवदेवः	= देवताओं के प्रभु
दातुं	= देने में	अस्माकं	= हमारे
क्षमः न	= समर्थ नहीं हैं	दयितः	= प्रियतम हैं ॥३३॥
सः	= वही		

संग्रहेण सुखदुःखलक्षणं
मां प्रति स्थितमिदं शृणु प्रभो ।
सौख्यमेव *भवता समागमः
स्वामिना विरह एव दुःखिता ॥३४॥

प्रभो	= हे स्वामी !	समागमः	= सहवास
शृणु	= सुनिये	एव	= ही
संग्रहेण	= संक्षेप से	(मम)	= मेरा
मां प्रति	= मेरे विषय में	सौख्यम्	= सुख है
स्थितम्	= ठहरा हुआ	(च भवता)	= और आप
सुखदुःख-लक्षणम्	= सुख और दुःख का लक्षण	स्वामिना	= स्वामी का
		विरहः एव	= वियोग ही
इदम्	= यह है	(मम)	= मेरा
भवता	= आप के साथ	दुःखिता	= दुःख है ॥३४॥

*वास्तव में प्रभु का समावेश ही उसका पारमार्थिक समागम कहलाता है । अब जो सांसारिक विषयों में किञ्चित् सुखाभास सा होता है, वह क्षण-भंगुर और नाशवान होने के कारण वास्तव में असुख ही है । यथार्थ सुख-रूपता तो केवल उसी प्रभु के समावेशात्मक समागम में है । इसी सुख को वेदादि सभी शास्त्रों में "भूमा" नाम से आदरपूर्वक वर्णन किया गया है । इसी समावेशात्मक समागम की ओर यहाँ संकेत है ।

सततमेव भवच्चरणाम्बुजा-
करचरस्य हि हंसवरस्य मे ।
उपरि मूलतलादपि चान्तरा-
दुपनमत्वज भक्तिमृणालिका ॥३५॥

अज = हे जन्म रहित प्रभो !	मृणालिका = मृणालिका
भवत् = आप के	उपरि = ऊपर से
चरणाम्बुज = चरण कमलों के	मूलतलात् = लता की जड़ के स्थान से
आकर = सरोवर में	च = और
चरस्य = विहार करने वाले	अन्तरादपि = बीच में से भी
मे = मेरे आत्मा रूपी	सततम् एव = सदा ही
हंसवरस्य = उत्तम हंस को	उपनमतु = उठ कर उपलब्ध हो जाय ॥३५॥
(भवत्) = आप की	
भक्ति- = भक्तिरूपिणी	

त्वद्वपुःस्मृतिसुधारसपूर्णे
मानसे तव पदाम्बुजयुग्मम् ।
मामके विकसदस्तु सदैव
प्रस्रवन्मधु किमप्यतिलोकम् ॥३६॥

त्वत् = आप के	पूर्णे = भरे हुए
वपुः- = स्वरूप की	मामके = मेरे
स्मृति- = स्मृति रूपी	मानसे = मन में
सुधारस- = अमृत के रस से	तव = आप के

पदाम्बुज-	= चरण कमलों का	प्रस्रवन्	= बहाता हुआ
युग्मम्	= जोड़ा	सदैव	= सदा के लिए
किमपि	= किसी अकथनीय	विकसत्	= खिला
अतिलोकं	= अलौकिक	अस्तु	= रहे ॥३६॥
मधु	= आनन्दरूपी पुष्प-रस को		

अप्युपार्जितमहं त्रिषु लोके-
ष्वाधिपत्यममरेश्वर मन्ये ।
नीरसं तदखिलं भवदङ्घ्रि-*
स्पर्शनामृतरसेन विहीनम् ॥३७॥

अमरेश्वर	= हे देवेश !	उपार्जितम्	= प्राप्त किये गये
अहं	= मैं	तत्	= उस
भवत्	= आपके	अखिलं	= सम्पूर्ण
अङ्घ्रि-	= चरणों के	त्रिषु लोकेषु	= तीनों लोकों के
स्पर्शन-	= स्पर्श से उत्पन्न हुए	आधिपत्यं	= स्वामित्व को
		अपि	= भी
अमृतरसेन	= अमृत के रस से	नीरसं मन्ये	= नीरस समझता हूँ ॥३७॥
विहीनम्	= रहित		

* परमात्मा की ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति ही उनके चरणयुगल कहलाते हैं। स्वरूप साक्षात्कार के समय उनकी इन दो शक्तियों के विकास का अनुभव होता है, एवं चिदानन्दरूपी अमृतरस की प्राप्ति होती है। भक्तजन ही इस अलौकिक अमृतरस का आस्वादन करते हैं जिससे उनको समस्त सांसारिक उपभोग नीरस और तुच्छ दिखाई देते हैं।

विकसतु स्ववपुर्भवदात्मकं
समुपयान्तु जगन्ति ममाङ्गताम् ।
व्रजतु सर्वमिदं द्वयवल्गितं
*स्मृतिपथोपगमेऽप्यनुपाख्यताम् ॥३८॥

स्ववपुः	= मेरी आत्मा	सर्वं	= समस्त
भवदात्मकं	= आप का स्वरूप	द्वय-	= भेद प्रथा का
(भूत्वा)	= बन कर	वल्गितं	= विकास
विकसतु	= खिल उठे	स्मृति-पथ-	= स्मृति पथ में
जगन्ति	= यह सारा जगत्	उपगमे अपि	= जाकर भी
मम	= मेरा	अनुपाख्यतां	= उपाख्यारहित्य को ही
अङ्गताम्	= अंग	व्रजतु	= प्राप्त हो ॥३८॥
समुपयान्तु	= बन जाये		
इदं	= यह		

जय देव नमो नमोऽस्तु ते
सकलं विश्वमिदं तवाश्रितम् ।
जगतां परमेश्वरो भवान्
परमेकः शरणागतोऽस्मि ते ॥३९॥

देव	= हे द्योतनात्मक प्रभो!	जय	= आपकी जय हो

* यद्यपि शैव-योगियों को समस्त द्वैत-प्रथा नष्टप्राय भी हुई होती है, तथापि संस्काररूपतया उस द्वैत-प्रथा का अस्तित्व बना ही रहता है। ऐसी दशा को समक्ष रख कर भक्त अपने प्रभु से यह प्रार्थना करता है कि आप के अनुग्रह से मुझे यह द्वैत का विकास स्मृति-पट पर भी अंकित न होने पाये।

ते	= आप को	जगताम्	= सारे जगत के
नमो नमः	= बार बार नमस्कार	परमेश्वरः	= स्वामी हैं
		(इत्यतः)	= इस लिए
अस्तु	= हो	(अहं)	= मैं
इदं	= यह	परम्	= केवल
सकलं	= सारा	एकः	= एक ही
विश्वं	= संसार	ते	= आपकी
तव	= आप के	शरणागतोऽस्मि	= शरण में आया हूँ ॥३९॥
आश्रितं	= सहारे ठहरा है		
भवान्	= आप		

त्वद्भक्तितपनदीधिति-
संस्पर्शवशान्ममैष दूरतरम् ।
चेतोमणिर्विमुञ्चतु
रागादिकतप्तवह्निकणान् ॥४०॥

एष	= यह	रागादिक-	= रागादिक वासनाओं के
मम	= मेरा		
चेतः-	= हृदयरूपी	तप्त-	= जले हुए
मणिः	= सूर्यकान्त रत्न	वह्निकणान्	= संस्कार रूपी अंगारों के ज़र्रों को भी
त्वत्	= आप की		
भक्ति-	= भक्तिरूपी		
तपन-	= सूर्य की	दूरतरम्	= बहुत दूर
दीधिति-	= किरणों से	विमुञ्चतु	= हटा दे ॥४०॥
संस्पर्शवशात्	= स्पर्शित होकर		

गलतु विकल्पकलङ्कावलिः समुल्लसतु हृदि निरर्गलता।
भगवन्नानन्दरसप्लुतास्तु मे चिन्मयी मूर्त्तिः ॥४१॥

भगवन्	= हे भगवन् !	समुल्लसतु	= चमक उठे
(मे)	= मेरे	(च)	= और
विकल्प-	= संकल्प विकल्प-रूपी	मे	= मेरी
		चिन्मयी	= चैतन्यमयी
कलङ्कावलिः	= कलंक की माला	मूर्त्तिः	= मूर्ति
गलतु	= नष्ट हो जाय	आनन्दरस	= आनन्द के रस से
हृदि	= मेरे हृदय में	प्लुता	= आप्लावित
निरर्गलता	= पूर्ण स्वतंत्रता का भाव	अस्तु	= हो जाय ॥४१॥

तस्मिन्पदे भवन्तं सततमुपश्लोकयेयमत्युच्चैः ।
हरिहर्यश्वविरिञ्चा अपि यत्र बहिः प्रतीक्षन्ते ॥४२॥

(अहं)	= मैं	यत्र	= जहाँ
तस्मिन्	= उस आप के	हरि-	= भगवान् विष्णु
पदे	= परम धाम में	हर्यश्व-	= इन्द्र और
सततं	= सदा	विरिञ्चाः	= ब्रह्मा
अत्युच्चैः	= बहुत ऊंचे स्वर में	अपि	= भी
		बहिः	= बाहिर
भवन्तं	= आप की	(एव)	= ही
उपश्लोकयेयं	= स्तुति श्लोकों द्वारा करूँ	प्रतीक्षन्ते	= प्रतीक्षा करते हैं ॥४२॥

क्व नु रागादिषु रागः क्व च हरचरणाम्बुजेषु रागित्वम्।
इत्थं विरोधरसिकं बोधय हितममर मे हृदयम् ॥४३॥

अमर	= हे प्रभो !	रागित्वम्	= भक्ति !
क्व नु	= कहाँ	इत्थं	= ऐसी
रागादिषु	= राग आदि विषयों के प्रति	हितम्	= कल्याण की बात
रागः	= आसक्ति	विरोधरसिकं	= विरोध में रसिक अर्थात् विरोध में फंसे हुए
च	= और	मे	= मेरे
क्व	= कहाँ	हृदयं	= मन को
हर-	= महादेवजी के	बोधय	= समझायें ॥४३॥
चरण-अम्बुजेषु	= चरण कमलों के प्रति		

तत्तदपूर्वामोदत्वच्चिन्ताकुसुमवासना दृढ़ताम् ।
एतु मम मनसि यावन्नश्यतु दुर्वासनागन्धः ॥४४॥

(प्रभो)	= हे स्वामी	(तावत्)	= तब तक
तत्तत्	= उस	दृढ़ताम्	= दृढ़भाव को
अपूर्व-	= अनूठी	एतु	= प्राप्त हो जाय
आमोद-	= सुगंधि से युक्त	यावत्	= जब तक कि
त्वत्	= आप के	दुर्वासना	= बुरी वासना रूपिणी
चिन्ता-	= चिन्तन रूपी		
कुसुमवासना	= फूलों की सुगंधि	गन्धः	= दुर्गन्धि
मम	= मेरे	नश्यतु	= समूल नष्ट हो जाय ॥४४॥
मनसि	= हृदय में		

विचरन्योगदशास्वपि विषयव्यावृत्तिवर्त्तमानोऽपि ।
त्वच्चिन्तामदिरामदतरलीकृतहृदय एव स्याम् ॥४५॥

(नाथ)	= हे नाथ !	(अहं)	= मैं
योग-	= योग संबन्धी	त्वत्-	= आप के
दशासु	= अवस्थाओं में	चिन्ता-	= चिन्तन रूपिणी
विचरन्नपि	= विचरण करता हुआ भी	मदिरा-	= मदिरा की
		मद-	= मस्ती से
विषय-	= विषयों के	तरलीकृत-हृदयः	= लोल हृदय वाला
व्यावृत्ति-	= नियमनादि साधनाओं में	एव	= ही
वर्त्तमानः	= लगा हुआ	स्याम्	= बनूँ ॥४५॥
अपि	= भी		

*समुत्सुकास्त्वां प्रति ये भवन्तं
प्रत्यर्थरूपादवलोकयन्ति ।
तेषामहो तत्किमुपस्थितं स्या-
त्किं साधनं वा फलितं भवेत्तत् ॥४६॥

त्वां	= आप की	समुत्सुकाः	= लालायित बने हुए
प्रति	= ओर		

* तात्पर्य यह है कि जिस अलौकिक साधन के द्वारा भक्त-जन आपके स्वरूप को प्रत्येक घटपटादि पदार्थों में करामलकवत् देखते हैं, उस अनुपम साधना को समझना हमारी बुद्धि की सीमा से बाहिर है । उस साधना को या तो वे भक्त ही जान सकते हैं अथवा उनके प्रभुदेव ।

ये	= जो भक्त-जन	उपस्थितं	= उपलब्ध
भवन्तं	= आपको	स्यात्	= होता होगा
प्रत्यर्थरूपात्	= प्रत्येक वस्तु में	वा	= और उस साधना से
अवलोकयन्ति	= देखते हैं	तत् किम्	= वह कौनसी अवस्था
तेषाम्	= उनको	फलितं भवेत्	= प्राप्त होती होगी ॥४६॥
अहो	= भला		
तत्	= वह		
किं	= कौन-सा		
साधनं	= साधन		

सदा भवद्देहनिवासस्वस्थो-
ऽप्यन्तः परं दह्यत एष लोकः ।
तवेच्छया तत्कुरु मे यथात्र
त्वदर्चनानन्दमयो भवेयम् ॥४७॥

एषः	= यह	अन्तर्	= भीतर ही भीतर
लोकः	= सांसारिक लोग	दह्यते	= जलाये जाते हैं अर्थात् दुःखी होते हैं
सदा	= सदा	(इत्यतः)	= इस लिये
भवत्-	= आपके	(त्वं)	= आप
देह-	= स्वरूप में	तव	= अपनी
निवास-	= रहने के कारण	इच्छया	= इच्छा से
स्वस्थः	= स्वस्थ होने पर	मे	= मेरे लिये
अपि	= भी	तत्कुरु	= ऐसा कीजिये
वासनात्मकैः भावैः	= सांसारिक वासनाओं से		

यथा = जिस से कि
(अहं) = मैं
अत्र = इस संसार में
त्वत् = आपकी
अर्चन = पूजा रूपिणी

आनन्द- = आनन्दरूपता से
मयः = युक्त
(एव) = ही
भवेयम् = बन जाऊँ ॥४७॥

परं परस्थं गहनादनादि-
मेकं निविष्टं बहुधा गुहासु ।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं
त्वामेव शम्भुं शरणं प्रपद्ये ॥४८॥

(अहं) = मैं
गहनात्- परस्थं = मायोत्तीर्ण धाम में ठहरे हुए
परं = उत्कृष्ट
अनादिं = अनादि
एकं = अद्वितीय
बहुधा = अनेक प्रकार के
गुहासु = हृदय रूपी गुफाओं में
निविष्टं = बैठे हुए
सर्वालयं = सब के विश्रांति-स्थान

(च) = और
सर्व- = सभी
चराचरस्थं = स्थावर जंगम में ठहरे हुए
त्वां = आप
शरणं = सब जगत के रक्षक
शम्भुं = शिवजी महाराज को
एव = ही
प्रपद्ये = प्रणाम करता हूँ ॥४८॥

ते पङ्कमङ्कगतमात्मनि धावयन्ति
दिङ्मण्डलं च परितः परिपावयन्ति ।
क्लेशान्क्षणात्तृणगणानिव लावयन्ति
ये त्वां प्रकाशवपुषं हृदि भावयन्ति ॥४६॥

ये	= जो भक्त	दिङ्मण्डलं	= सारी दिशाओं को
प्रकाशवपुषं	= प्रकाशस्वरूप	परितः	= चारों ओर से
त्वां	= आपका	परिपावयन्ति	= पवित्र करते हैं
हृदि भावयन्ति	= हृदय में ध्यान करते हैं	च	= और
ते	= वे	क्लेशान्	= अविद्या आदि क्लेशों को
आत्मनि	= अपने हृदय के	तृणगणान्	= तिनकों के समूह की
अङ्कगतं	= बीच में होने वाले	इव	= भांति
पङ्कं	= अज्ञान रूपी कीचड़ को	क्षणात्	= क्षण भर में
धावयन्ति	= धो डालते हैं	लावयन्ति	= काट देते हैं ॥४६॥

मानुष्यनावमधिगम्य चिरादवाप्य
निस्तारकं च करुणाभरणं भवन्तम् ।
यस्याभवद्भरवशास्तरितुं भवाब्धिं
सोऽहं ब्रुडामि यदि कस्य विडम्भनेयम् ॥५०॥

चिरात्	= चिरकाल के बाद	भरवशः	= भरोसा
मानुष्य-	= मनुष्य-जन्म रूपी	अभवत्	= हो गया है,
नावं	= नौका को	सः	= वही
अवाप्य	= प्राप्त कर	अहं	= मैं
च	= और	यदि	= यदि
करुणाभरणं	= दया से सुशोभित	ब्रड़ामि	= (इस भवसागर से पार जाने के बजाय) डूब ही जाऊँ
निस्तारकं	= पार ले जाने वाले		
भवन्तं	= आपको		
(अवाप्य)	= पा कर	(तर्हि)	= तो
यस्य	= जिस	इयं	= यह
(मे)	= मुझ को	विडम्भना	= हँसी
भवाब्धिं	= भवसागर	कस्य	= किसकी होगी ?
तरितुं	= पार करने का		॥५०॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः पुनातु वः
सहस्रचक्षुर्भगवान् सहस्रपात् ।
गलेऽङ्घ्रिमूले नयने च निश्चला-
स्त्रयोऽप्यमी यं पुरुषा-उपासते ॥५१॥

सहस्रशीर्षा	= सहस्र फणों वाला	(एवं)	= और
पुरुषः	= पुरुष अर्थात् श्री शेषनाग जी	सहस्रपात्	= हज़ार किरणों वाला सूर्य भगवान्
सहस्रचक्षुः	= सहस्र नेत्रों वाला पुरुष इन्द्रदेव	अमी	= ये
		त्रयः	= तीनों

पुरुषाः = पुरुष		उपासते = भजते हैं	
अपि = भी		(सः) = वह	
निश्चलाः = निश्चल		सहस्रशीर्षा = अनंत शिरों वाला	
(सन्तः) = होकर		सहस्रचक्षुः = अनंत नेत्रों वाला	
यं = जिस		(च) = और	
(शिवम्) = शिवजी महाराज को		सहस्रपात् = अपरिमित पदों वाला	
(क्रमेण) = क्रमशः		पुरुषः = महापुरुष	
गले = कण्ठ देश में		भगवान् = विराट् रूप भगवान् शङ्कर	
अङ्घ्रिमूले = चरणों पर			
च = आर		वः = आप लोगों को	
नयने = नेत्र-स्थान पर		पुनातु = पवित्र करे ॥५१॥	

ओं

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि
सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु
माम् अवतु वक्तारम् ओं शांतिः शांतिः शांतिः ।

मित्रः = प्राण और दिन अभिमानी देवता	भवतु = होवें
नः = हमको	वरुणः = अपान और रात्रि अभिमानी देवता
शं = सुखकारी	नः = हमें

शम्	=	सुखप्रद
भवतु	=	होवें
अर्यमा	=	नेत्र और सूर्य अभिमानी देवता
नः	=	हमको
शं	=	सुखकारी
भवतु	=	होवें
इन्द्रः	=	बल अभिमानी देवता
नः	=	हमें
शं	=	सुखदायक
भवतु	=	होवें
बृहस्पतिः	=	वाणी अभिमानी देवता
नः	=	हमको
शं	=	सुखकारी
भवतु	=	होवें
उरुक्रमः	=	राजा बलि के यज्ञ पर बढ़ाने वाले चरणों वाला
विष्णुः	=	भगवान् नारायण
नः	=	हमको
शं	=	सुखकारी
भवतु	=	होवे

ब्रह्मणे	=	व्यापक ब्रह्म को
नमः	=	नमस्कार हो
वायो	=	हे वायु देवता
ते	=	आपको
नमः	=	नमस्कार हो
त्वं	=	आप ही
प्रत्यक्षं	=	प्रत्यक्ष
ब्रह्म	=	ब्रह्म
असि	=	हैं
त्वामेव	=	आप को ही
प्रत्यक्षं	=	प्रत्यक्ष
ब्रह्म	=	ब्रह्म
वदिष्यामि	=	मैं कहूँगा
त्वामेव	=	आप को ही
ऋतं	=	निश्चयात्मक बुद्धि
वदिष्यामि	=	मैं कहूँगा
त्वामेव	=	आप को ही
सत्यं	=	सत्यस्वरूप
वदिष्यामि	=	मैं कहूँगा
तत्	=	वह वायुरूप ब्रह्म
माम्	=	मुझ विद्यार्थी को
अवतु	=	रक्षा करे अर्थात् विद्या से युक्त करे
तत्	=	वह वायुरूप ब्रह्म

वक्तारम् = आचार्य अर्थात् गुरु की
अवतु = रक्षा करे अर्थात् विद्या पढ़ाने में समर्थ बनावे
माम् = मुझे
अवतु = रक्षा करे
वक्तारम् = गुरुदेव को
अवतु = रक्षित करे
ॐ शांतिः = आध्यात्मिक विघ्नों से शांति हो !
शांतिः = आधिभौतिक विघ्नों से शांति हो !
शांतिः = आधिदैविक विघ्नों से शांति हो !

ॐ शांतिः

॥ओ३म् ॥

श्रीब्रह्मविद्या

श्रीमन्महामाहेश्वराचार्यवर्य-श्रीमदभिनवगुप्त-
विरचिता ।

शिवभक्तानुचर-राजानकलक्ष्मणकृत-
भाषाटीकोपेता ।

॥ ओ३म् ॥

श्रीब्रह्मविद्या ।

अथोच्यते ब्रह्मविद्या सद्यः प्रत्ययदायिनी ।
शिवः श्रीभूतिराजो यामस्मभ्यं प्रत्यपादयत् ॥१॥

अब प्राप्तावसर श्रीब्रह्मविद्या का श्रीगणेश करेंगे । इस ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हमें कल्याणस्वरूप श्रीभूतिराजजी के द्वारा हुई है । यह ब्रह्मविद्या महाकाल के मुख से छुड़ाकर मनुष्य-मात्र को तत्क्षण ही पूर्ण-विश्वास दिलाती है ॥१॥

सर्वेषामेव भूतानां मरणे समुपस्थिते ।
यया पठितयोत्क्रम्य जीवो याति निरञ्जनम् ॥२॥

मृत्यु के समय इस ब्रह्मविद्या का पाठ करने से जीवात्मा इस देह को त्याग कर निरञ्जन पद को प्राप्त करता है ॥२॥

या ज्ञानिनोऽपि संपूर्णकृत्यस्यापि श्रुता सती ।
प्राणादिच्छेदजां मृत्युव्यथां सद्यो व्यपोहति ॥३॥

आप्तकाम ज्ञानी पुरुष भी यदि इस ब्रह्मविद्या का श्रवण अन्तकाल में करे तो वह भी प्राणों के भंग से उत्पन्न हुई मरण-पीड़ा को क्षण भर में त्याग देता है ॥३॥

यामाकर्ण्य महामोहविवशोऽपि क्रमाद्गतः ।
प्रबोधं वक्तृसांमुख्यमभ्येति रभसात्स्वयम् ॥४॥

मृत्यु के समय महामोह से परवश बना हुआ व्यक्ति भी इस ब्रह्मविद्या को सुनकर अनायास ही वक्ता के सन्मुख होकर ज्ञान को प्राप्त करता है ॥४॥

॥ इति माहात्म्यम् ॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ
परमपदात्त्वमिहागाः सनातनस्त्वं जहीहि देहान्तम् ।
पादाङ्गुष्ठादि विभो निबन्धनं बन्धनं ह्युग्रम् ॥१॥
ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

हे व्यापक प्रभो ! आप परमधाम से इस देह में आये हुए हैं। आप सनातन पुरुष हैं। पाद-अंगुष्ठ से लेकर सारे देह में ठहरे हुए बन्धनों के फलस्वरूप देह-ममत्व को त्याग दीजिये ॥१॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ
गुल्फान्ते जानुगतं जत्रुस्थं बन्धनं तथा मेढ्र ।
जहिहि पुरमग्र्यमध्यं हृत्पद्मात्त्वं समुत्तिष्ठ ॥२॥
ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

पादग्रन्थि, जानु, कंधे और कांख (बगल) के जोड़ों में

तथा गुदा में स्थित देह-बन्धन को त्याग करके हृत्कमल के द्वारा प्रफुल्लित बन जाइये ॥२॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

हंस हयग्रीव विभो सदाशिवस्त्वं परोऽसि जीवाख्यः।
रविसोमवह्निसङ्घट्टबिन्दुदेहो हहह समुत्क्राम ॥३॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

हे नीरक्षीरविवेकी राजहंस! हे हयग्रीव! हे व्यापक! आप पर-जीव-नामक साक्षात् सदाशिव हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का स्वरूप बने हुए प्राण, अपान तथा समान के मेल से आप स्वप्रकाशरूप शरीर वाले हैं; अतः आप निश्चयपूर्वक इस देह से निकल जाइये ॥३॥

ओं ह्रां हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

हंस महामन्त्रमयः सनातनस्त्वं शुभाशुभापेक्षी।
मण्डलमध्यनिविष्टः शक्तिमहासेतुकारणमहार्थः॥
कमलोभयविनिविष्टः प्रबोधमायाहि देवतादेह ॥४॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

हे द्योतनात्मक स्वरूप वाले हंस! आप पुण्य-पापों की उपेक्षा करने वाले परमन्त्रस्वरूप सनातन पुरुष हैं। आप शक्ति-रूपी पुल के कारण, बने हुए परमार्थ स्वरूप से युक्त समस्त संसार-मण्डल में तथा हृदय-कमल के दोनों पुटों के बीच में ठहरे हुए हैं। अतः आप प्रबोध को प्राप्त हो जाइये ॥४॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ
अज्ञानात्त्वं बद्धः प्रबोधितोत्तिष्ठ देवादे ॥५॥
ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

हे आद्यदेव ! आप अज्ञान के कारण ही बद्ध से प्रतीत होते हैं ; अतएव आप पूर्ण-ज्ञान को प्राप्त होते हुए उठ जाइये ॥५॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ
व्रज तालुसाह्वयान्तं ह्यौदुम्बरघट्टितमहाद्वारम् ।
प्राप्य प्रयाहि हंहो हंहो वा वामदेवपदम् ॥६॥
ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

हे हंहः* मन्त्रस्वरूप वाले परमात्मन् ! आप तालुस्थान में औदुम्बर नामक यमराज के द्वारा हिलाये गये परमद्वार को प्राप्त करके वामदेव की पदवी को प्राप्त कीजिये ॥६॥

---

*शैव संबन्धी रहस्यवाद के अनुसार वर्णमाला के निर्णय में शक्तिप्रधान तीन विसर्ग तथा शिवप्रधान तीन बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है। यहाँ संकेतरूपता से प्रसंगवश उनके विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। शक्तिप्रधान "परविसर्ग, परापरविसर्ग और अपरविसर्ग" के वाचक क्रमेण "आ, अः और ह्" वर्ण माने गये हैं। इसी भाँति शिवप्रधान "परबिन्दु, परापरबिन्दु और अपरबिन्दु" के वाचक क्रमपूर्वक "अ, अं और म" वर्ण कहे गये हैं। इसी आशय के आधार पर उपरोक्त "हंहः" मन्त्रस्वरूप में शिवशक्तिसंघट्टरूपता की ओर संकेत है।

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

ग्रन्थीश्वर परमात्मन् शान्तमहातालुरंध्रमासाद्य ।
उत्क्रम हे देहेश्वर निरञ्जनं शिवपदं प्रयाह्याशु ॥७॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

हे ग्रन्थियों के स्वामी ! हे देह के प्रभो ! हे परमात्मदेव ! अति प्रशान्त तालु में स्थित लम्बिका नामक रन्ध्र को प्राप्त कर इस देह का त्याग करके निरञ्जन शिव पदवी को प्राप्त करें ॥७॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

आक्रम्य मध्यमार्गं प्राणापानौ समाहृत्य ।
धर्माधर्मौ त्यक्त्वा नारायण याहि शान्तान्तम् ॥८॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

हे नारायण ! आप मध्यधाम का आश्रय लेकर प्राणापान को लयीभूत करके पुण्यपापात्मक बन्धनों को त्याग कर अति शांत-धाम को प्राप्त कीजिये ॥८॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे रुद्र शिवोऽसि वासुदेवस्त्वम् ।
अग्नीषोमसनातन मृत्पिण्डं जहिहि हे महाकाश ॥९॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

हे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्वरूप वाले प्रभो ! आप स्वयं

कल्याणस्वरूप वासुदेव हैं। हे पराकाशस्त्ररूप ! हे अग्नीषोमात्मक देव ! हे सदा रहने वाले भगवान् ! आप इस पार्थिव देह-पिण्ड को त्याग दीजिये ॥९॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

अंगुष्ठमात्रममलमावरणं जहिहि हे महासूक्ष्म ॥१०॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

हे महासूक्ष्मस्वरूप ! आप हृदय में ठहरे हुए अंगुष्ठमात्र निर्मल सूक्ष्म शरीर रूपी आवरण को भी छोड़ दीजिये ॥१०॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

पुरुषस्त्वं प्रकृतिमयै-
बद्धोऽहंकारतन्तुना बन्धः।
अभवाभव नित्योदित,
परमात्मंस्त्यज सरागमध्वानम् ॥११॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

हे परमात्मदेव ! आप सदा रहने वाले तथा सर्वदा संसार से विलग ठहरे हुए हैं। आप साक्षात् पर पुरुष हैं। आप अपनी परा प्रकृति के द्वारा ही अहंकार रूपी पाशों से बन्धन में पड़े हुए हैं। इत्यतः आप रागद्वेषात्मक संसार के पथ को छोड़ दीजिये ॥११॥

ओं ह्रीं हूँ फें ह् र् च् म् ल् व् य् णूँ

ह्रीं हूँ मन्त्र शरीरमविलम्ब-

माशु त्वमेहि देहान्तम् ॥१२॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

हे देव ! आप ह्रीं हूँ मन्त्रस्वरूप वाले बनकर निर्विलम्ब में देह त्याग पद को प्राप्त कीजिये ॥१२॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

तदिदं गुणभूतमयं त्यज स्वषाट्कोशिकं पिण्डम् ॥१३॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

हे देव ! आप इस अपनाये हुए त्रिगुणात्मक तथा पाञ्च-भौतिक षट्कोशात्मक देह-पिण्ड का त्याग शीघ्र करें ॥१३॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

मा देहं भूतमयं प्रगृह्यतां शाश्वतं महादेहम् ॥१४॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

आप इस पाञ्चभौतिक देह को ग्रहण न करके सनातन चिदाकाशस्वरूप पर शरीर को प्राप्त कीजिये ॥१४॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

मण्डलममलमनन्तं त्रिधा
स्थितं गच्छ भित्त्वैतत् ॥१५॥

ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह्‌ र्‌ च्‌ म्‌ ल्‌ व्‌ य्‌ णूँ

त्रिलोकात्मक इस संसार मण्डल की परिधि को काट कर अनन्त तथा निर्मल चिदाकाश मण्डल को प्राप्त कीजिये ॥१५॥

॥ इति शिवम् ॥

सकलेयं ब्रह्मविद्या स्यात्पञ्चदशभिः स्फुटैः ।
वाक्यैः पञ्चाक्षरैस्त्वस्या निष्कला परिकीर्त्यते ॥१॥
प्रतिवाक्यं यथाद्यन्तयोजिता परिपठ्यते ।

पंद्रह वाक्यों से रचित यह ब्रह्मविद्या स्फुटरूपता से सकला ब्रह्मविद्या कहलाती है। पर, प्रत्येक वाक्य के आद्य और अन्त में पञ्चाक्षरात्मक मन्त्र से संपुटित बन कर यह ब्रह्मविद्या निष्कला नाम से कही जाती है ॥१॥

तारो माया वेदकलो मातृतारो नवात्मकः ।
इति पञ्चाक्षराणि स्युः प्रोक्तव्याप्त्यनुसारतः ॥२॥

तारः—प्रणवः । माया—ह्रीं । वेदकलः अथवा चतुष्कलः—हूँ । मातृतारः—फ्रें । नवात्मकः—ह् र् क्ष् म् ल् व् य् णूँ । एवं "ओं ह्रीं हूँ फ्रें ह् र् क्ष् म् ल् व् य् णूँ"—इति पञ्चाक्षराणि ।

ओंकार तार कहलाता है, इसी भाँति ह्रीं बीज माया, हूँ बीज वेदकल, फ्रें मातृतार और ह् र् क्ष् म् ल् व् य् णूँ नवात्मक मन्त्र कहा जाता है। इन सारे बीजों को मिला कर पञ्चाक्षर मन्त्र बनता है। इसी पञ्चाक्षर मन्त्र से संपुटित बन कर उपरोक्त पंद्रह वाक्यों वाली ब्रह्मविद्या निष्कला ब्रह्मविद्या कहलाती है। इस निष्कला ब्रह्मविद्या का पाठ प्रतिदिन करने से पुण्यपापों का संबन्ध छूट जाता है और जीवात्मा परमात्मा परमेश्वर के साथ एकीभाव को प्राप्त करता है। इति शम् ॥

॥ इति श्रीब्रह्मविद्या समाप्ता ॥

शुद्धि-अशुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
११	१६	चिद्रसस्योघं	चिद्रसस्याघं
१४	१, ५	पुरन्दर	पुरन्धर
१५	२३	त्वद्ध्यान	त्वद्ध्यान
१७	६	रजःप्रधान	रजप्रधान
१८	१	स्तुति करते	स्तुति करत
१६	५	युक्तं ते	युक्त ं ते
३१	७	निविष्टं	निविष्ठं
३२	१६	निविष्टं	निविष्ठं
३२	२०	ब्रुड़ामि	ब्रड़ामि
३२	२०	विडम्बनेयम्	विडम्भनेयम्
३३	६	ब्रुड़ामि	ब्रड़ामि
३३	१२	विडम्बनेयम्	विडम्भनेयम्
४०	१६	मेढ्रे	मेढ्र
४०	१७	पुरमग्र्यमध्यं	पुरमग्यमध्यं
४१	१३	शुभाशुभोपेक्षी	शुभाशुभापेक्षी
४१	१४,१५	निविष्टः	निविष्ठः
४२	८,१२	ह्यौडम्बर	ह्यौदुम्बर
४२	८	घट्टितं	घट्टित
४४	११	बन्धैः	बन्धः
४४	२१	मन्त्रशरी	मन्त्रशरीर